प्रेम क्या है?

अकेलापन क्या है?

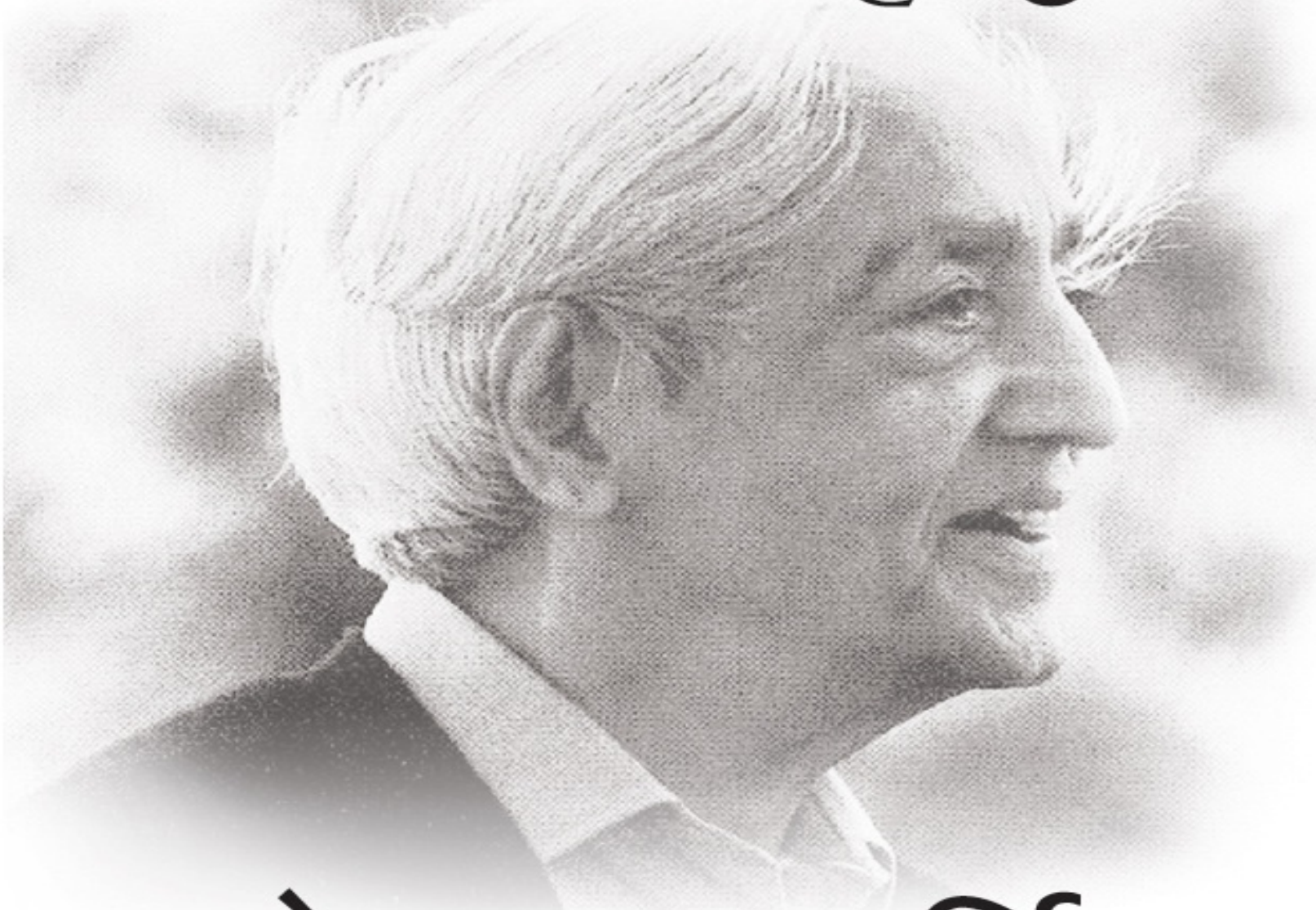

जे. कृष्णमूर्ति

प्रेम क्या है ?

अकेलापन क्या है ?

प्रेम क्या है

अकेलापन क्या है ?

जे. कृष्णमूर्ति

राजपाल

अनुवादक
अचलेश चन्द्र शर्मा

प्रथम संस्करण : 2013
ISBN : 978-93-5064-133-0

Prem Kya Hai? Akelapan Kya Hai
Hindi Translation of *Love and Loneliness* by J. Krishnamurti

Translated by : Achalesh Chandra Sharma

For the original English Text
© Krishnamurti Foundation Trust Ltd. Brockwood Park,
Bramdean Hampshire S024 OLQ England
&
© Krishnamurti Foundation of America,
P.O. Box No. 1560 Ojai, California 93024 U.S.A.

For the Hindi Translation
© Krishnamurti Foundation India
Vasanta Vihar, 124-126, Greenways Road.
Chennai-600 028

राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली– **110006**
website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : Sales@rajpalpublishing.com

‘‘यदि आप में प्रेम नहीं है तो आप जो चाहे करें–
चाहे आप दुनिया भर के तमाम देवी–देवताओं
के चक्कर काट लें, तमाम तरह की
समाज सेवा कर लें, ग़रीबों के उत्थान
के प्रयास करते रहें, राजनीति में कूद पड़ें,
पुस्तकें लिख लें, कविताएं रच लें–
आप एक निष्प्राण और स्पंदनविहीन इंसान ही रहेंगे।
बिना प्रेम के आपकी समस्याएं बढ़ती ही जाएंगी–
दिन दूनी रात चौगुनी–उनका कोई ओर–छोर न होगा।
किंतु, प्रेम के रहने पर आप चाहे जो करें,
उसमें न कोई ख़तरा होगा
और न कोई टकराव।
तब प्रेम ही गुण का सार हो जाएगा।’’

प्राक्कथन

जिड्डू कृष्णमूर्ति का जन्म 1895 ई. में भारत के वर्तमान आंध्र प्रदेश राज्य में हुआ था। जब वे तेरह वर्ष के थे, तो थियोसॉफिकल सोसाइटी ने उन्हें अपनी देख-रेख में ले लिया तथा यह घोषित किया कि उनमें आगामी विश्व-शिक्षक मैत्रेय बुद्ध का अवतरण होगा। इस अवतरण के विषय में सोसाइटी में पूर्व से ही मान्यता थी। बाद के वर्षों में कृष्णमूर्ति एक ऐसे प्रभावशाली और स्वतंत्रचेता शिक्षक के रूप में हमारे सामने आते हैं, जिन्हें किसी श्रेणी में परिभाषित नहीं किया जा सकता; उनकी वार्ताएं तथा लेखन किसी भी धर्मविशेष से नहीं जुड़े हैं और उनकी शिक्षाएं केवल पूर्व तथा पश्चिम के लिए नहीं, अपितु संपूर्ण मानवता के लिए हैं। अपनी मसीहाई छवि को दृढ़तापूर्वक अस्वीकृत करते हुए कृष्णमूर्ति ने एक बड़े और समृद्ध संगठन को भंग कर दिया, जो उन्हीं को केंद्र में रखकर निर्मित किया गया था; उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि सत्य एक 'मार्गरहित भूमि' है, और उस तक किसी भी औपचारिक धर्म, दर्शन अथवा संप्रदाय के माध्यम से नहीं पहुंचा जा सकता।

इसके उपरांत कृष्णमूर्ति ने गुरु कहलाने से, जो विशेषण उन पर प्राय: आरोपित किया जाता रहा, आग्रहपूर्वक इनकार किया। पूरे विश्व में एक विशाल श्रोतावर्ग उनकी ओर आकर्षित होता रहा, किंतु कृष्णमूर्ति ने कभी सत्ता-प्रामाण्य का दावा नहीं किया, शिष्य नहीं चाहे। वे समूह से नहीं, सीधे व्यक्ति से बात कर रहे थे, वह भी मित्र की तरह। उनकी शिक्षाओं के केंद्र में इस सत्य का बोध है कि इस समाज में कोई भी आधारभूत परिवर्तन केवल वैयक्तिक चेतना के रूपांतरण द्वारा ही लाया जा सकता है। धार्मिक और राष्ट्रवादी संस्कारों द्वारा मनुष्य को सीमित तथा विभाजित करने वाले प्रभावों को ठीक से समझ लेने की आवश्यकता पर उन्होंने निरंतर ज़ोर दिया। कृष्णमूर्ति ने एक खुलेपन की, परिधियों से स्वातंत्र्य की बात हमेशा उठाई–"मस्तिष्क में वह विराट अवकाश, जिसमें वह अकल्पनीय ऊर्जा है।" ऐसा प्रतीत होता है कि यही उनकी सर्जनात्मकता का अक्षय स्रोत भी था और विश्व के विभिन्न स्थानों के, इतनी विस्तीर्ण विविधता लिये लोगों के जीवन की दिशा बदल देने वाले उनके शब्दों के, उनकी उपस्थिति के गहन अमुखर प्रभाव की कुंजी भी इसी में छिपी है।

1986 ई. में नब्बे वर्ष की आयु में अपनी मृत्यु तक कृष्णमूर्ति पूरे विश्व में विभिन्न स्थानों पर अपनी बात कहते रहे। उनकी वार्ताएं व संवाद, दैनंदिनियां व पत्र साठ से अधिक पुस्तकों में संगृहीत हैं। शिक्षाओं के इस विशाल भंडार से विविध विषयों पर आधारित प्रस्तुत पुस्तकमाला का संकलन किया गया है। प्रत्येक पुस्तक एक ऐसे विषय को केंद्रबिंदु बनाती है, जिसकी हमारे जीवन में विशिष्ट प्रासंगिकता तथा महत्त्व है। यह पुस्तक 'प्रेम क्या है? अकेलापन क्या है?' इसी माला का एक पुष्प है।

क्रम

रोज़मर्रा की ज़िंदगी में संबंधों की सही समझ
सुखभोग हमारे जीवन में इतना अहम क्यों हो गया है?
मन क्या है?
हमारा जीवन, हमारे संबंध इतने खोखले क्यों हैं?
क्या प्रेम मन की उपज है?
हम अपने जीवन को एक समस्या क्यों बना देते हैं?
भय से छुटकारा
अकेलेपन का सिलसिला
मन के खालीपन को कैसे भरें?
अकेलापन महसूस करने का मतलब है–प्रेम का अभाव
क्या विचार प्रेम होता है?
इस पल में, 'अब' में कैसे जिया जाए?
प्रेम के मुद्दे पर स्वयं से एक संवाद
अव्यवस्था के मूल कारण
व्यक्तिगत ही नहीं, क्या मानव मात्र के दुख का अंत हो सकता है?
हम जो हैं उसे कैसे समझें?
सुख, सौंदर्य, प्रेम
दुख क्या होता है?
किसी समस्या का दमन करने या उससे दूर भागने से उसका निराकरण नहीं हो जाता
भय से भागना भय उपजाता है
मन को ठेस लगती क्यों है?
प्रेम में कोई दुख नहीं होता
ज़रूरत और इस्तेमाल का रिश्ता प्रेम नहीं

रोज़मर्रा की ज़िंदगी में संबंधों की सही समझ

इन सभी सवालों पर, अपनी रोज़मर्रा की परेशानियों पर मिलकर बातचीत करते हुए, मैं समझता हूं, हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि यह खोजबीन हम मिलजुलकर कर रहे हैं। हम जीवन के ख़ासे जटिल मुद्दों की तहकीकात में साथ-साथ चल रहे हैं, और इस तरह मिलजुल कर खोजबीन करने के लिए एक विशेष प्रकार की सघनता और प्रबलता की दरकार होती है, मन की एक ऐसी खूबी जिसे किसी विशेष विश्वास या निष्कर्ष के खूंटे से बांधा नहीं जा सकता, और जो दूर तक जाने को तैयार है, समय का फ़ासला तय करने को नहीं बल्कि समझ की गहराई में उतरने को।

हम मिलजुल कर यह पता लगाएंगे कि क्या हम अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में, यानी अपने संबंधों में, व्यवस्था ला सकते हैं। क्योंकि संबंध ही समाज है। आपके और मेरे बीच का संबंध, मेरे और किसी और के बीच का संबंध समाज का ढांचा है। यानी, संबंध समाज का ढांचा है, उसकी प्रकृति है। मैं इसे बहुत ही सरल ढंग से कह रहा हूं। और जब उस संबंध में कोई व्यवस्था नहीं रहती, जैसा कि आजकल दिखाई दे रहा है, तब निश्चित ही हर कर्म न केवल अंतर्विरोध लाता है, बल्कि बेइंतहा दु:ख, परेशानी, भ्रम और द्वंद्व भी पैदा करता है। देखिए, मैं ही न बोलता रहूं, बल्कि हम मिलजुल कर विमर्श करें क्योंकि यह यात्रा हम साथ-साथ कर रहे हैं, मानो एक दूसरे का हाथ थामे हुए, स्नेह के साथ, एक सरोकार के साथ। यदि आप बस यूं ही बैठ कर वार्ता सुनते रहेंगे, भाषण सुनते रहेंगे तो माफ़ कीजिएगा, तब आप और मैं इस यात्रा में साथ-साथ नहीं चल सकेंगे। तो, मेहरबानी करके अपने मन को, अपने संबंध को बड़े ध्यान से देखिए–चाहे वह किसी के भी साथ हो, अपनी पत्नी, अपने बच्चों, अपने पड़ोसी, या अपनी सरकार के साथ–और देखिए कि क्या उस संबंध में कोई व्यवस्था है; क्योंकि व्यवस्था ज़रूरी है, हर चीज़ का अपनी जगह सटीक होना ज़रूरी है। सुव्यवस्था सद्गुण है, सुव्यवस्था गणित की तरह एकदम निश्चित है, एकदम शुद्ध और संपूर्ण है, और हम पता लगाने जा रहे हैं कि क्या ऐसी व्यवस्था मुमकिन है?

संबंध के बिना कोई जी नहीं सकता। भले ही आप सब कुछ छोड़-छाड़कर पहाड़ों में चले जाएं, बैरागी या संन्यासी बन जाएं, रेगिस्तान में अकेले भटकते फिरें, किंतु आप किसी न किसी से संबंधित रहते ही हैं। इस ध्रुव सत्य से आप बच नहीं सकते। आप नितांत पृथकता में नहीं जी सकते। आपका मन ऐसा मान भले ही ले कि वह अकेले, एकांत में जी रहा है, या एकांत की अवस्था को पैदा कर रहा है, पर उस एकांत में भी आप किसी न किसी से संबंधित हैं। जीवन संबंध है और संबंध जीवन है। यदि आप और मैं अपने चारों ओर दीवार खड़ी कर लें, और उस दीवार के ऊपर से कभी-कभार बस झांक लें, तो हम जी नहीं सकते हैं। अवचेतन रूप से, कहीं गहराई में, दीवार के नीचे-पीछे भी हमारे बीच एक रिश्ता है। मुझे नहीं लगता कि हम लोगों ने संबंध के इस सवाल पर बहुत अधिक ध्यान दिया है। आपके ग्रंथ संबंध के बारे में कुछ नहीं बताते; वे ईश्वर के बारे में, रीति-रिवाज़ों और कर्मकांडों के बारे में–सांस कैसे लेना है, यह या वह कैसे करना है–बस, इसी की चर्चा करते हैं; मुझे बताया गया है कि संबंध का कभी ज़िक्र नहीं आता।

संबंध में ज़िम्मेदारी निहित है, वैसे ही जैसे स्वतंत्रता में। संबंधित होने का अर्थ है–जीना; यही जीवन है, अस्तित्व है। और संबंधों में, आपसी रिश्तों में यदि अव्यवस्था है, तो हमारी पूरी सामाजिक संरचना, सारी संस्कृति छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाएगी, जो अभी हो रहा है।

तो, व्यवस्था, तरतीबी क्या है, आज़ादी क्या है, और संबंध क्या है? अव्यवस्था क्या है? क्योंकि जब मन वाकई गहराई से, अंतर्मन से उसे समझ लेता है जिससे अव्यवस्था पैदा होती है, तब उस अंतर्दृष्टि में से, उस सजगता में से, उस अवलोकन में से, व्यवस्था खुद-ब-खुद निकलकर आती है। ऐसा कोई तैयार नक्शा या ख़ाका नहीं होता जो बता दे कि व्यवस्था क्या होनी चाहिए; हम उसी के अनुसार ही पले-बढ़े हैं–एक ढर्रे के अनुसार, जिसे धर्मों ने, संस्कृतियों ने गढ़ा है, कि व्यवस्था क्या होनी चाहिए, या व्यवस्था क्या है। हमारे मन-मस्तिष्क ने उस व्यवस्था के अनुसार ढलने की कोशिश की है, चाहे वह सांस्कृतिक व्यवस्था हो, सामाजिक व्यवस्था हो, वैधानिक व्यवस्था हो या धार्मिक व्यवस्था हो; इसने उस ढर्रे के अनुसार चलने की कोशिश की है जिसे किसी

सामाजिक प्रचलन, किन्हीं नेताओं, गुरुओं द्वारा स्थापित किया गया है। मेरी नज़र में वह व्यवस्था नहीं है क्योंकि उसमें अनुकरण अंतर्निहित है, और जहां अनुकरण है, वहां अव्यवस्था है। जहां प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया गया है, वहां अव्यवस्था है। जहां तुलनात्मक अस्तित्व है–अर्थात् स्वयं को किसी और के मुकाबले मापना, अपनी तुलना किसी और से करना–वहां अव्यवस्था है। क्यों या कैसे, यह मैं आपको बताऊंगा।

आपका मन-मस्तिष्क अनुकरण क्यों करता है? क्या आपने कभी पूछा है? क्या आपको इस बात का भान है कि आप किसी ढर्रे का अनुकरण कर रहे हैं? इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि वह ढर्रा है क्या, चाहे स्वयं आपने एक ढर्रा गढ़ा हो या इसे आपके लिए स्थापित कर दिया गया हो। क्यों हम हमेशा ही किसी न किसी ढर्रे के, किसी पैटर्न के पिछलग्गू बने रहते हैं? और, ज़ाहिर है कि जहां अनुकरण रहेगा, पिछलग्गूपन रहेगा, वहां स्वतंत्रता नहीं रह सकती। फिर भी, मन हमेशा ही स्वतंत्रता की, मुक्ति की तलाश में लगा रहता है–मन जितना अधिक प्रबुद्ध होगा, जितना अधिक सचेत होगा, जितना अधिक जागरूक होगा, उसकी यह मांग उतनी ही बढ़ती जाएगी। मन अनुकरण, नकल इसलिए करता है क्योंकि अनुकरण में, किसी ढर्रे का अनुपालन करने में अधिक सुरक्षा है। यह एक निर्विवाद सत्य है। आप सामाजिक तौर पर तमाम किस्म के काम करते रहते हैं क्योंकि अनुकरण करना बेहतर है, आसान है। भले ही आपकी शिक्षा-दीक्षा विदेश में हुई हो, भले ही आप जाने-माने वैज्ञानिक या नेता हों, किंतु आपके अंदर एक डर हमेशा छिपा रहता है कि यदि आप मंदिर नहीं जाएंगे, या अपने दैनिक जीवन के काम उस तरह नहीं करेंगे जिस तरह आपको बताया गया है तो कुछ अनिष्ट हो सकता है, और इसलिए आप उसी ढर्रे पर चलते हैं। जो मन इस प्रकार ढर्रे पर चलता है, उसका क्या होता है? इस बात का पता लगाइए, खोजबीन कीजिए; करके तो देखिए। जब आप आंख मूंद कर अनुकरण कर रहे होते हैं, तब आपके मन-मस्तिष्क का क्या होता है? सबसे पहले, स्वतंत्रता पूरी तरह से नकार दी जाती है, बोधशक्ति पूरी तरह से नकार दी जाती है, स्वतंत्र रूप से समझने व जानने की जिज्ञासा पूरी तरह से नकार दी जाती है। जब आप अनुकरण करते हैं, तो भय चला आता है। क्या मैं सही कह रहा हूं? बचपन से ही हमारे मन-मस्तिष्क को अनुसरण करने की, किसी ढर्रे पर आंख मूंद कर चलने की घुट्टी पिलाई गई है, वह ढर्रा जो समाज द्वारा तैयार किया गया है–परीक्षाएं पास करना, कोई डिग्री हासिल करना, भाग्य अच्छा हुआ तो कोई नौकरी पा लेना और फिर शादी कर लेना, बस। आप उस ढर्रे को अपना लेते हैं और उस ढर्रे से हटकर जीने से डरते हैं।

तो, अंदर ही अंदर आप स्वतंत्रता को नकारते हैं, अंदर ही अंदर आप डरे हुए हैं, अंदर ही अंदर आपको जानने-समझने, खोजबीन करने, तलाश करने, पूछने की स्वतंत्रता न होने का एहसास है। और यह हमारे संबंध में अव्यवस्था पैदा करता है। आप और मैं दरअसल इस विषय की तह तक जाने का प्रयास कर रहे हैं ताकि यथार्थ अंतर्दृष्टि पाई जा सके, ताकि इसकी सच्चाई जानी जा सके, और इस सच्चाई को भांपना ही मन-मस्तिष्क को स्वतंत्र, उन्मुक्त कर देता है, न कि कोई अभ्यास-अनुशासन या खोजबीन की गतिविधि, बल्कि 'जो है' का वास्तविक दर्शन।

हम संबंध में, रिश्तों में आंतरिक और बाहरी–दोनों रूप से, अव्यवस्था लाते हैं–भय के ज़रिए, अनुकरण के ज़रिए, माप के ज़रिए, जो कि तुलना है। हमारा संबंध गड़बड़ाता है, न केवल आपस में, चाहे वह कितना ही अंतरंग क्यों न हो, बल्कि बाहरी तौर पर भी। यदि हम उस अव्यवस्था को सच में देख लेते हैं, कहीं बाहर नहीं बल्कि अपने भीतर, अपने अंदर गहराई तक देख लेते हैं, इसके सारे निहितार्थ देख लेते हैं, तब उस दर्शन-बोध से व्यवस्था आती है। तब हमें किसी थोपी गई व्यवस्था के अनुसार जीने की ज़रूरत नहीं होती है। व्यवस्था का कोई ढर्रा नहीं है, यह एक तैयार नक्शा या ब्लूप्रिंट नहीं है; यह अव्यवस्था के ताने-बाने को समझ लेने से आती है। संबंध में अव्यवस्था को आप जितना अधिक समझेंगे, उतनी ही बेहतर व्यवस्था पाएंगे। अत: हमें पता लगाना है कि एक दूसरे के साथ हमारा रिश्ता क्या है।

दूसरे के साथ आपका रिश्ता है क्या? आपका किसी के साथ कोई संबंध है भी, या आपका संबंध केवल अतीत के साथ है? अपनी छवियों, अनुभवों, जानकारियों से गुथा हुआ अतीत जो कुछ उभारता है उसे आप संबंध कह देते हैं। किंतु जानकारी संबंध में अव्यवस्था पैदा करती है। मैं आपसे संबंधित हूं। मैं आपका बेटा, आपका पिता, आपकी पत्नी, आपका पति हूं। हम साथ रहते आए हैं; आपने मुझे ठेस पहुंचाई है और मैंने आपको। आपने मुझे तंग किया है, आपने मुझ पर धौंस जमाई है, आपने मुझे मारा-पीटा है, आपने मेरी पीठ पीछे व मेरे सामने कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। इसी तरह मैं आपके साथ रहा हूं, चाहे दस वर्ष से रह रहा हूं या दो दिन से, और ये स्मृतियां भी साथ में चलती रही हैं–ठेस, झुंझलाहटें, यौन-सुख, नाराज़गियां, कड़े और कठोर शब्द, इत्यादि। वे मेरे मस्तिष्क की उन कोशिकाओं में बसे हैं जो स्मृतियों को थामे रहती हैं। इस तरह आपके साथ मेरा संबंध इसी अतीत पर आधारित है। अतीत ही मेरा जीवन है। यदि आपने गौर किया है तो अवश्य देखा होगा कि किस प्रकार

मन, आपका जीवन, आपकी गतिविधि, सब अतीत में जड़ें जमाए हैं। जिस संबंध की जड़ें अतीत में समाई हुई हों उसमें अव्यवस्था तो अवश्य ही पनपेगी। अर्थात् जानकारी संबंध में अव्यवस्था लाती है। यदि आपने मुझे ठेस पहुंचाई है तो मैं उसे याद रखता हूं; वह ठेस चाहे आपने मुझे कल पहुंचाई हो या एक सप्ताह पहले, वह मेरे मन में घर कर जाती है, यही वह जानकारी या ज्ञान है जो मैं आपके बारे में रखता हूं। वही ज्ञान हमारे रिश्तों में आड़े आता है; वही ज्ञान संबंधों में अव्यवस्था पैदा करता है। तो प्रश्न उठता है : जब आप मुझे ठेस पहुंचाते हैं, मेरी यूं ही तारीफ़ करते हैं, जब आप मेरा अपमान करते हैं, तब क्या मन उसे दर्ज किए बिना ही उसी पल एक नई शुरुआत कर सकता है? क्या आपने कभी ऐसा प्रयास किया है?

पत्तियों के बीच से झांकता हुआ वह चांद कितना प्यारा लग रहा है, है न? और उन कौवों की कर्कश कांव-कांव और शाम की ढलती रोशनी भी बेहद खूबसूरत है! पत्तियों के बीच से उभरता हुआ वह बेहद खूबसूरत चांद एक अद्‌भुत दृश्य है। उसे देखिए, उसका आनंद लीजिए। मान लाजिए कि कल किसी ने कठोर शब्दों में मुझसे कुछ ऐसी बातें कहीं जो सच नहीं हैं। जो कुछ उसने कहा वह मन में दर्ज हो गया है, और उस दर्ज की हुई बात के साथ ही मन उस व्यक्ति की पहचान भी नत्थी कर लेता है और उसी के अनुसार बर्ताव करता है। उस अपमान, उन कटु वचनों, उस झूठी बात के ज्ञान के साथ रिश्ता बुनकर जहां मन बर्ताव करने लगता है, तब वह ज्ञान रिश्ते में अव्यवस्था लाता है। सही है? तो यह कैसे हो कि अपमान या सम्मान किए जाने वाले पलों में मन उसे दर्ज न करे? क्योंकि मेरी नज़र में जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ संबंध है।संबंधविहीन जीवन में अव्यवस्था का होना निश्चित है। जो मन व्यवस्था में रहता है, संपूर्ण व्यवस्था में, जो कि सुनिश्चित, गणीतीय व्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप है, वह एक मिनट के लिए भी अव्यवस्था का साया अपने ऊपर नहीं पड़ने देता है। और वह अव्यवस्था तो जन्म ही तब लेती है जब मन संबंध में अतीत के ज्ञान के आधार पर बर्ताव करता है। तो यह कैसे हो कि मन यह तो जाने कि अपमान हुआ है, या सम्मान हुआ है, किंतु उसे दर्ज न करे? क्या यह हो सकता है कि वह यह तो जाने कि ऐसा हुआ है, किंतु उसे दर्ज न करे, ताकि मन हमेशा निर्मल, साफ़-सुथरा, स्वस्थ रहे, संबंध में परिपूर्ण रहे?

क्या इसमें आपकी दिलचस्पी है? आप जानते हैं कि यह जीवन की सबसे बड़ी समस्या है, यदि आपकी इसमें वाक़ई दिलचस्पी है, कि संबंध में ऐसे कैसे जिया जाए कि मन को कभी ठेस न लगे, मन में कभी विकार-विकृति न आए। अब क्या यह संभव है? हम एक असंभव प्रश्न रख रहे हैं। यह एक असंभव प्रश्न ही है, और हमें इसका असंभव उत्तर ढूंढना है। क्योंकि जो संभव है, वह औसत दर्जे का है, वह पहले ही हो चुका है, निबट चुका है; किंतु यदि आप असंभव प्रश्न पूछेंगे, तो मन को उत्तर ढूंढना ही पड़ेगा। क्या वह ढूंढ पाएगा? यही प्रेम है। वह मन जो कोई मान-अपमान दर्ज नहीं करता, वही जानता है कि प्रेम क्या होता है।

क्या ऐसा हो सकता है कि मन कभी भी दर्ज न करे, किसी भी मान-अपमान को बिलकुल दर्ज न करे? क्या यह संभव है? यदि मन इसका उत्तर तलाश लेता है, तो मानो हमने संबंध की समस्या को सुलझा लिया है। हम संबंध में जीते हैं। संबंध कोई दिमागी ख़याल या वैचारिक उपज नहीं है, यह तो दिन-प्रतिदिन के जीवन का एक तथ्य है, वास्तविकता है। चाहे आप अपने काम पर जाते हों और लौटकर अपनी पत्नी के साथ झगड़ते हों या उसके साथ सोते हों, आप हमेशा किसी न किसी संबंध में जुड़े हैं। और यदि आपके और दूसरे के बीच, या आपके और बहुतों या एक के बीच, संबंध में व्यवस्था नहीं है, तो आप एक ऐसी संस्कृति का निर्माण करेंगे जो कि अंत में अव्यवस्था ही पैदा करेगी, जैसा कि आजकल हो रहा है। अत: व्यवस्था परम आवश्यक है। यह जानने की कोशिश कीजिए कि अपमान, ठेस, दुर्व्यवहार या कटुता व कठोरता मिलने पर भी, क्या मन एक पल के लिए भी उसे थामे बिना रह सकता है? जिस भी पल हम उसे थामते हैं, वह तुरंत दर्ज हो जाती है, मस्तिष्क में अपनी छाप छोड़ जाती है। इस प्रश्न की जटिलता को देखिए। क्या मन ऐसा कर सकता है ताकि वह पूरी तरह निर्मल और अबोध बना रहे? निर्मल व अबोध मन वह होता है जिसे ठेस लग ही नहीं सकती है। क्योंकि जिसे ठेस नहीं लगती है, वह किसी दूसरे को भी ठेस नहीं पहुंचाएगा। अब, क्या ऐसा संभव है? मन पर हर किस्म के प्रभाव की, हर किस्म की घटना की, हर किस्म की शरारत की, शंका-संदेह की बौछार होती है। क्या ऐसा हो सकता है कि मन इन्हें कभी भी दर्ज न करे और इस तरह से बहुत ही निर्मल, अबोध और साफ़-सुथरा बना रहे? हम मिलकर इसकी खोजबीन करेंगे।

इस आयाम तक आने के लिए यह देखना-जानना होगा कि प्रेम क्या है। क्या प्रेम विचार की उपज है? क्या प्रेम समय के दायरे में आता है? क्या प्रेम सुख-विलास है? क्या प्रेम कोई ऐसी चीज़ है जिसे पैदा किया जा सकता हो, जिसका अभ्यास किया जा सकता हो, और विचार द्वारा जिसे जोड़-तोड़ कर बनाया जा सकता हो? यह जानने व समझने के लिए हमें इस प्रश्न की तह तक जाना होगा: क्या प्रेम विषय-सुख है–अर्थात् यौन-सुख या

किसी अन्य प्रकार का सुख? हमारा मन हर समय किसी न किसी सुख-विलास की कोशिश में लगा रहता है, जैसे कल मैंने बड़ा ही स्वादिष्ट भोजन किया था, उस भोजन से मिला सुख मेरे मन में दर्ज हो गया है और उस स्वाद का वही सुख मैं फिर से चाहने लगता हूं, वैसा ही भोजन या उससे भी बढ़िया। शाम को क्षितिज की गोद में समाते हुए सूर्य को देखकर, या पत्तियों में से लुका-छिपी करते चंद्रमा को देख कर, या दूर समुद्र की सतह पर लहरों को अठखेलियां करते देख कर मेरा मन प्रफुल्लित हो जाता है। प्रकृति का वह सौंदर्य बड़ा सुख देता है, और वे पल बड़े सुखद होते हैं। मन उसे दर्ज कर लेता है और फिर उसकी पुनरावृत्ति चाहने लगता है। विचार यौन-सुख के बारे में सोचता है, उसकी जुगाली करता है, उसकी पुनरावृत्ति चाहने लगता है; और उसे आप प्रेम कहते हैं। ऐसा ही है न? जब यौन-सुख की बात की जाए तो शरमाइए मत, वह आपके जीवन का अंग है। इसे हेय और निंदनीय आपने बना दिया है क्योंकि आपने हर प्रकार की स्वतंत्रता को नकारा है, सिवाय उस एक स्वतंत्रता के।

तो, क्या प्रेम सुखभोग है? क्या सुखेच्छा की भांति ही प्रेम भी विचार द्वारा पकाया जाने वाला ख़याली पुलाव है? क्या प्रेम डाह है, ईर्ष्या है? क्या कोई ऐसा व्यक्ति भी प्रेम कर सकता है जो ईर्ष्यालु, लालची, महत्त्वाकांक्षी, हिंसक, अनुसरण व अनुकरण करने वाला, आज्ञाकारी व पूरी तरह अव्यवस्थित है? तो फिर प्रेम क्या है? यह बात तो साफ़ है कि प्रेम इस सब में से कुछ भी नहीं है। वह सुखभोग नहीं है। कृपया, सुखभोग के महत्त्व को समझिए। सुखभोग विचार द्वारा सींचा जाता है; इसलिए विचार प्रेम नहीं है। विचार प्रेम को पैदा नहीं कर सकता। वह तो सुखभोग की लालसा को पैदा कर सकता है और करता भी है, वैसे ही जैसे वह भय को पैदा करता है, किंतु वह प्रेम को पैदा नहीं कर सकता, न ही किसी तरह के जोड़-तोड़ से वह प्रेम की रचना कर सकता है। इस सत्य को देखिए। इसे देखिए और फिर आप अपनी महत्त्वाकांक्षा का, अपने लोभ-लालच का हमेशा के लिए परित्याग कर देंगे, उसे नकार देंगे। इस प्रकार नकारते हुए आप उस सबसे अद्‌भुत तथ्य-सत्य तक पहुंच जाएंगे, जो कि सबसे सकारात्मक है, जिसे प्रेम कहते हैं।

संबंध में गड़बड़ी का अर्थ है–प्रेम का नितांत अभाव, और उस गड़बड़ी का वजूद तभी रहता है जब किसी ढर्रे का अनुसरण किया जा रहा हो। इस तरह, जो मन सुखभोग, या जिसे वह प्रेम समझता है, के किसी ढर्रे का अनुकरण कर रहा हो, वह प्रेम को कभी नहीं जान पाएगा। जो मन इस अव्यवस्था के विकसित होने की, इसके पनपने की पूरी प्रक्रिया को समझ लेता है, वह उस व्यवस्था तक पहुंच जाता है जो सद्‌गुण है, इसलिए वह प्रेम है। यह आपका जीवन है, यह मेरा जीवन नहीं है। यदि आप इस प्रकार नहीं जिएंगे, तो आप पूरी तरह दुखी रहेंगे, सामाजिक अव्यवस्था में उलझे रहेंगे और उसी के बहाव में बहते चले जाएंगे। केवल वही व्यक्ति, जो कि इस बहाव से बाहर निकल आता है, जान पाता है कि प्रेम क्या है, व्यवस्था क्या है।

मद्रास,
16 दिसंबर 1972

प्रकाशक का नोट : मद्रास (अब चेन्नई) में हुई ये सार्वजनिक वार्ताएं संध्या समय बाहर खुले में आयोजित की गई थीं, जब मौसम थोड़ा सुहावना था।

सुखभोग हमारे जीवन में इतना अहम क्यों हो गया है?

मानव के नाते यदि हमें कुछ खोजबीन करनी है तो क्या उसकी शुरुआत हमें एक आज़ाद और खुले मन से नहीं करनी चाहिए? यदि हमें प्रेम जैसे दुरूह विषय को पूरी तरह से जानना-समझना है तो हमें उस खोजबीन को अपने सारे ख़ासे पूर्वाग्रहों, प्रवृत्तियों और सनकीपन से मुक्त होकर, और साथ ही उन शर्तों से मुक्त होकर करना होगा, जो यह निर्धारित करती आ रही हैं कि प्रेम क्या होना चाहिए–पुरातन या आधुनिक। छानबीन करने के लिए, जानने-समझने के लिए हमें इन तमाम चीज़ों को एक तरफ़ कर देना होगा, यदि यह संभव है, अन्यथा हम भटक जाएंगे और हम अपनी पक्षपातपूर्ण संस्कारबद्धता के अनुसार उसकी पुष्टि करने या विरोध करने में अपनी ऊर्जा गंवाते रहेंगे। प्रेम क्या है, इस विषय पर बात करते हुए क्या हम यह पता लगाने के महत्त्व को महसूस कर सकते हैं कि प्रेम का पूरा अभिप्राय क्या है और यह शब्द अपने आप में क्या-क्या अर्थ व गहनता वहन करता है और क्या-क्या नहीं करता है। क्या सबसे पहले हमें यह नहीं देखना चाहिए कि मन ने जो इस शब्द के बारे में अनेक निष्कर्ष पाल रखे हैं, उनसे वह मुक्त हो सकता है या नहीं? क्या यह संभव है कि हमारा मन अपने अंदर गहराई तक जड़ें जमाए बैठे पूर्वाग्रहों, प्रभावों, दबावों, झुकावों, निष्कर्षों के चंगुल से छूट जाए? चूंकि, प्रेम क्या है इस मुद्दे पर मिलजुल कर चर्चा करने के लिए मुझे ऐसा लगता है कि हमारा मन ऐसा हो जो कि बोध की क्षमता रखता हो; और ऐसा उपयुक्त और स्पष्टदर्शी मन तब तक नहीं हो सकता जब तक वह इस बारे में ऐसे तमाम पूर्वाग्रहों, सिद्धांतों, निष्कर्षों और निर्णयों से भरा रहेगा कि प्रेम क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए। मन का अध्ययन करने के लिए हमारी पूरी छानबीन स्वतंत्र भाव से शुरू होनी चाहिए–किसी वस्तु-विशेष से स्वतंत्र होने वाला भाव नहीं, बल्कि स्वतंत्रता का वह गुणधर्म वाला भाव जो कि देखने और अवलोकन करने में सक्षम हो, यह देखने में सक्षम हो कि सत्य क्या है। बाद में आप अपने पूर्वाग्रहों, अपनी ख़ासी निरर्थक बातों और निष्कर्षों में वापस जा सकते हैं, किंतु क्या हम कुछ देर के लिए सब कुछ उठा कर एक तरफ़ रख सकते हैं और छानबीन में इस स्वतंत्रता को बनाए रख सकते हैं?

कई चीज़ें शामिल हैं: यौनाचार, ईर्ष्या, अकेलापन, मोह-आसक्ति व संगसाथ का एहसास, भरपूर विषय-सुख; और इसीलिए भय भी। क्या ये सब उस एक शब्द में ही शामिल नहीं हैं? क्यों न हम विषय-सुख के मुद्दे से शुरुआत करें, क्योंकि प्रेम में यह एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहता है? अधिकतर धर्मों ने यौनाचार को नकारा है, क्योंकि उनका कहना है कि जो आदमी ऐंद्रिय सुखों में पड़ जाता है वह नहीं समझ सकता कि सत्य क्या है, ईश्वर क्या है, प्रेम क्या है, और परम तथा अपरिमेय क्या है। ईसाई धर्म में, भारत में, और बौद्ध धर्म में भी यही बात धर्म के रूप में सिखाई-पढ़ाई जाती है। हम जब इस प्रश्न की तह तक जा रहे हैं कि प्रेम क्या है, तो हमें अपने उन पुरातन या आधुनिक पूर्वाग्रहों से और विरासत में प्राप्त उन संस्कारों से भी अवगत होना होगा जो यौन-सुख पर बहुत किस्म के प्रतिबंध लगाते आए हैं — प्राचीन व आधुनिक — या उसकी सीमाएं खींचते आए हैं।

विषय-सुख हमारे जीवन में एक असाधारण भूमिका निबाहता है। यदि आपने कभी तथाकथित पहुंचे हुए आत्म-संयमी, प्रबुद्ध तथा धार्मिक लोगों से बात की हो–मैं उन्हें धार्मिक नहीं कहूंगा, किंतु वे धार्मिक कहलाते हैं–तो आप देखेंगे कि अखंड ब्रह्मचर्य उनकी सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है। आपको लग सकता है कि यह तो अब पूरी तरह अप्रासंगिक हो गया है, कि ये ब्रह्मचर्य या कौमार्य की बातें आज की दुनिया में कोई स्थान नहीं रखतीं, और आप आगे बढ़ जाते हैं। मुझे लगता है कि ऐसा करना खेदपूर्ण होगा क्योंकि ब्रह्मचर्य या कौमार्य क्या होता है, यह जानना भी एक समस्या है। प्रेम क्या है–इस प्रश्न की तह तक पहुंचने के लिए हमारे पास एक खुला और गंभीर मन होना चाहिए, जो खोजबीन कर सके, न कि केवल शाब्दिक तर्क देता रहे। विषय-सुख हमारे जीवन में इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका क्यों निबाहता है? मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह सही है या ग़लत, हम ख़ोजबीन कर रहे हैं; ऐसा कोई दावा यहां नहीं किया जा रहा है कि यौनाचार या विषय-सुख होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। हमारे जीवन की हर गतिविधि में विषय-सुख इतनी बड़ी भूमिका क्यों निबाहता है? वह हमारी मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है, किंतु इसे इतना उद्दाम विस्तार क्यों दे दिया गया है, केवल पश्चिम में ही नहीं जहां कि यह इतना असभ्य, इतना भद्दा है, बल्कि पूरब में भी? यह हमारी विकराल समस्याओं में से एक है। क्यों? धर्मों

ने–तथाकथित धर्मों ने–पादरियों-पुजारियों ने इसकी खूब भर्त्सना की है। उनका कहना है कि यदि आपको ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो आपको ब्रह्मचर्य व्रत लेना होगा। भारत में एक संन्यासी को मैं जानता हूं जो बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, विद्वान हैं, प्रबुद्ध हैं। पंद्रह या सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने संन्यास ले लिया था और ब्रह्मचर्य का व्रत भी। किंतु, आगे चलकर–वह मुझे तब मिले थे जब वह चालीस के आसपास थे–उन्होंने इन व्रत-संकल्पों को छोड़ दिया और विवाह कर लिया। उन्हें बड़ी दुर्दशा की स्थिति से गुज़रना पड़ा क्योंकि भारतीय संस्कृति उस आदमी को बहुत धिक्कारती है जो संन्यासी हो जाने के बाद पुन: सांसारिक बन जाता है। उन्हें जात-बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया गया और बड़ा बुरा वक़्त देखना पड़ा। और यही मानसिकता ज़्यादातर लोगों की होती है। यौनाचार ने इतना विचित्र महत्त्व क्यों हासिल कर लिया है?

दुनिया भर में पोर्नोग्राफ़ी की समस्या फैल रही है, जिसमें जो चाहे वह पढ़ने, छापने और दिखाने की खुली छूट है, आज़ादी देने के लिए। आप जानते हैं जो कुछ भी दुनिया में होता है उसका प्रेम के साथ क्या लेना-देना है? इस सब का मतलब क्या है — प्रेम,यौनाचार,विषय-सुख,और अखंड ब्रह्मचर्य?कृपया मत भूलिए उस शब्द को या उस शब्द के अर्थ को जिसे इंसान ने इतना महत्त्व दिया है–ताकि ब्रह्मचर्य का जीवन जीया जा सके। आइए, यह पता लगाएं कि युगों-युगों से आदमी यौनाचार को इतना प्रमुख स्थान क्यों देता आया है, और क्यों इसके प्रति इतना विरोध-प्रतिरोध चलता आ रहा है। मैं नहीं जानता कि हम इसका उत्तर कैसे दे पाएंगे।

क्या एक कारक यह नहीं है कि यौन-क्रिया में पूरी स्वतंत्रता रहती है? बौद्धिक रूप से हम अनुकरण करते हैं, बौद्धिक रूप से हम रचनात्मक नहीं हैं, बौद्धिक रूप से हम दूसरों के पदचिह्नों पर चलने वाले हैं; हम दोहराते हैं–दोहराते हैं जो दूसरों ने कहा है, दोहराते हैं अपने तुच्छ विचारों को। ऐसे में हम मूल रूप से क्रियाशील, रचनाशील, जीवंत और स्वतंत्र नहीं रह जाते; और भावनात्मक रूप से हममें कोई उमंग-उत्साह नहीं रहता, हममें कोई गहन अभिरुचि नहीं रहती। हम कभी उत्साही होते भी हैं तो वह उत्साह जल्दी ही तिरोहित हो जाता है; स्थायी उमंग हममें नहीं रहती, और हमारा जीवन काफी हद तक मशीनी हो जाता है, एक दिनचर्या में बंधकर रह जाता है। चूंकि यह जीवन बौद्धिक रूप से, तकनीकी रूप से और काफ़ी हद तक भावनात्मक रूप से बारंबार दोहराए जाने वाली प्रतिक्रियाओं से भरपूर है, इसलिए स्वाभाविक है कि उस सब से भिन्न यह क्रिया अत्यंत असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाती है। यदि हममें बौद्धिक रूप से स्वतंत्रता होती और हमारे अंदर गहन उमंग, आग की लपट होती तो फिर यौनाचार का अपना स्थान होता और उसके महत्त्व का विस्तार सिमटकर अपने आप ही गैरमामूली बन जाता। हम इसे इतना भारी महत्त्व नहीं देते, इसके माध्यम से निर्वाण प्राप्ति की बात नहीं करते, और न ही ऐसा सोचते कि यौनाचार के माध्यम से हम मानव जाति के साथ संपूर्ण एकत्व प्राप्त कर लेंगे। आप जानते ही हैं उन सब चीज़ों को, जिन्हें हम उसके माध्यम से पा लेने की सोचते हैं!

तो क्या हमारे मन उन्मुक्त, आज़ाद हो सकते हैं? क्या हमारे मन ज़बरदस्त जीवंत और स्पष्टदर्शी हो सकते हैं, सहज समझ-बूझ में सक्षम?–वह समझ नहीं जो हमने दूसरों से बटोर ली है, दार्शनिकों, मनोविज्ञानियों और उन तथाकथित आध्यात्मिक उपदेशकों से बटोर ली है, जो बिलकुल भी आध्यात्मिक नहीं हैं। जब गहरी और उमंगभरी स्वतंत्रता वाली गुणवत्ता आ जाती है, तब यौनाचार का अपना सीमित महत्त्व बच रहता है। तो फिर पवित्रता अर्थात् अखंड ब्रह्मचर्य क्या है? क्या इस पवित्रता का हमारे जीवन में कोई स्थान है? 'पवित्र' शब्द का अर्थ क्या है, शब्दकोश के अनुसार नहीं बल्कि इसका गहन अर्थ क्या है? ऐसा मन होने का क्या अर्थ है जो कि पूर्णतया पवित्र हो? मेरे विचार से हमें इसकी खोजबीन करनी चाहिए। शायद वह ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।

अवलोकनकर्ता और अवलोकित का द्वैत खड़ा किए बिना, यदि कोई अपने मन की समूची गतिविधि के प्रति केवल सजग हो जाए, उससे अवगत रहे तो क्या उसे वहां लगातार आकार लेती छवियां, धारणाएं, तरह-तरह के सुखों, दुखों, दुर्घटनाओं व अपमानों की स्मृतियां, और अनगिनत संस्कार, प्रभाव और दबाव दिखाई नहीं देते हैं? हमारे मन इन्हीं से तो भरे रहते हैं। विचार किसी यौन-क्रिया के बारे में सोचता है, उसका चित्रण करता है, उसकी कल्पना करता है, भड़कीले भावों को थामे, संजोए रखता है, उत्तेजित होता है। ऐसा मन पवित्र मन नहीं है। पवित्र मन तो वह होता है जिसमें कोई चित्र नहीं होता, कोई छवि नहीं होती है। तब मन सदा निर्मल, निर्दोष और निष्कपट रहता है। इन शब्दों का अर्थ है–एक ऐसा मन जो ठेस को ग्रहण नहीं करता है और न ही ठेस पंहुचाता है; वह न किसी को आहत कर सकता है और न खुद आहत हो सकता है, पर फिर भी वह कोई कवच नहीं ओढ़ता। ऐसा मन ही पवित्र मन होता है। किंतु, जो लोग पवित्रता का बस व्रत ले लेते हैं वे बिल्कुल पवित्र नहीं रह पाते हैं, वे तो जीवन भर अपने आप से जूझते रहते हैं। पूरब के, और पश्चिम के भी, अनेक संन्यासियों और मठवासियों को मैं जानता हूं जिन्होंने ईश्वर की प्राप्ति के नाम पर कैसा यातनापूर्ण जीवन बिताया है। उनके मन विकृति और संताप के शिकार हो गए हैं।

सुखभोग के अंतर्गत यही सब आता है। प्रेम का सुखेच्छा से क्या नाता है? प्रेम और सुख की तलाश के बीच क्या संबंध है? ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों साथ-साथ चलते हैं। हमारे गुण सुखभोग पर आधारित हैं, हमारी नैतिकता सुखभोग पर आधारित है। हम कहते हैं कि आप त्याग द्वारा–जो आपको सुखभोग देता है!–या प्रतिरोध-प्रतिबंध द्वारा उस तक पहुंच सकते हैं, जो आपको उपलब्धि का सुख दे सकता है। तो यदि सुखविलास और प्रेम के बीच कोई सीमा रेखा है तो वह कहां है? क्या ये दोनों साथ-साथ और परस्पर गुंथे हुए रह सकते हैं? या, ये दोनों सदा अलग रहते हैं? आदमी ने कहा है, 'ईश्वर से प्रेम करो, और उस प्रेम का सांसारिक प्रेम से कुछ लेना-देना नहीं है।' आप जानते हैं कि यह समस्या कुछ विगत शताब्दियों से नहीं, बल्कि चिरकालीन है। तो वह सीमा रेखा कहां खिंची है जो इन दोनों को अलग करती है, या इनके बीच कोई सीमा रेखा है ही नहीं? या तो यह है या वह है, और जब हम सुख के पीछे दौड़ रहे होते हैं, जैसा कि अधिकतर लोग कर रहे हैं–ईश्वर के नाम पर, शांति के नाम पर, समाज सुधार के नाम पर–तो इस दौड़ में प्रेम का क्या स्थान रह जाता है?

इसलिए हमें इन प्रश्नों में पैठ करनी होगी : सुखविलास क्या है, आनंद और लुत्फ़ क्या है और हर्ष क्या है? क्या परम-आनंद किसी सुख से जुड़ा है? हां या न मत कह बैठिए। आइए, मिलकर पता लगाते हैं। किसी सुंदर वृक्ष को, बादल को, पानी पर पड़ते प्रकाश को, सूर्यास्त को, आकाश के विशाल विस्तार को, या किसी पुरुष, स्त्री या बालक के सुंदर मुखड़े को देखिए। वाकई में खूबसूरत किसी चीज़ को देखकर जो खुशी मिलती है उसमें अत्यंत आनंद है और साथ में उस असाधारण, अद्‌भुत, श्रेष्ठ, निर्मल, प्रेय चीज़ के प्रति सराहनापूर्ण सम्मान का भाव भी है। और जब आप इस सुख को नकारते हैं, तब आप सौंदर्य की समूची अनुभूति व अवबोध को नकारते हैं। और धर्मों ने भी इसे नकारा है। मुझे बताया गया है कि पश्चिम में प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों को धार्मिक चित्रों के बीच शामिल करने की अनुमति अभी हाल ही में दी गई है, जबकि पूरब में और चीन में वृक्षों के और प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों को हमेशा से श्रेष्ठ और धार्मिक ही माना जाता रहा है।

मन सुख के पीछे आख़िर क्यों पड़ा रहता है? यह नहीं कि यह सही है या ग़लत, किंतु इस सुख का विधि-विधान क्या है? यदि आप अपनी सहमति दे देते हैं या असहमति देते हैं, तो हम भटक चुके हैं, किंतु यदि हम मिलजुल कर सचमुच तलाशते हैं कि सुखभोग की पूरी प्रक्रिया, पूरी कार्य-पद्धति क्या है, तब शायद हम समझ पाएंगे कि वास्तविक हर्षोल्लास क्या होता है। फिर, वह हर्ष और परम-आनंद क्या है जिसमें आह्लाद की अनुभूति शामिल है? क्या ऐसा आनंद विषय-सुख से जुड़ा है? हर्ष क्या कभी सुखभोग बन सकता है?

सुखविलास की कार्य-पद्धति क्या है? मन क्यों इतना अधिक इसके पीछे पड़ा रहता है? आप अवबोध की प्रक्रिया को रोक नहीं सकते–कोई सुंदर घर देखना, या कोई मनमोहक हरा-भरा घास का मैदान और उस पर पड़ती चटक धूप को देखना, या रेगिस्तान के विस्तार को देखना जिसमें घास की एक पत्ती भी नहीं होती, या फिर आकाश के अछोर विस्तार को देखना। देखने से तो आप बच नहीं सकते, और उस देखने में ही सुख है, खुशी है, है न? जब आप कोई सुंदर चेहरा देखते हैं–केवल सुसंगत और सुडौल चेहरा नहीं बल्कि एक ऐसा चेहरा जिसमें गहराई हो, सौंदर्य हो, और प्रज्ञा तथा जीवंतता जैसे गुण उसके भीतर से झांकते हों–ऐसा चेहरा देखना एक अद्‌भुत बात है और उस अवबोध में एक खुशी है। तो, यह खुशी सुखविलास में कब तबदील हो जाती है? आप मिकेलांजेलो द्वारा बनाई गई एक प्यारी-सी मूर्ति देखते हैं और बड़े ध्यान से देखते हैं; वह बहुत कमाल की चीज़ है, दरअसल कमाल उस चीज़ या विषयवस्तु का नहीं बल्कि उसकी गुणवत्ता का है। उसे देखने की प्रत्यक्ष अनुभूति में आपको बड़ा सुख और बड़ी प्रसन्नता मिलती है।

आप वहां से चले जाते हैं और मन उसके बारे में सोचता है, विचार-प्रक्रिया शुरू हो जाती है। आप मन ही मन कहते हैं, कितनी बढ़िया चीज़ थी वह। उसे देखने में बड़ा अच्छा-सा एहसास था, एक गज़ब का एहसास था; फिर विचार उसे एकत्रित करता है, याद करता है, और उस सुख को याद करता है जो उस मूर्ति को निहारते समय आपको मिल रहा था। फिर विचार उस बीते सुख का निर्माण करता है, उसमें प्राण फूंकता है, उस पूरी घटना को निरंतरता देता है जो कि तब घटित हुई थी जब आपने उस मूर्ति को देखा था। इस प्रकार विचार उस सुख के पीछे लगने के लिए ज़िम्मेदार है। मैं इसका आविष्कार नहीं कर रहा, आप स्वयं भी इसे देख सकते हैं। आप सूर्यास्त का कोई सुंदर दृश्य देखते हैं और बाद में सोचते हैं 'काश, मैं दोबारा वहां जाकर वह दृश्य एक बार फिर देख सकता'। जिस पल आप वह सूर्यास्त देख रहे थे तब कोई सुखविलास नहीं था। तब आप बस एक अद्‌भुत नज़ारा देख रहे थे जिसमें रोशनी थी, रंग थे, गहराई थी। जब आप वहां से चले गए और अपनी दिनचर्या में लग गए तब आपका मन कहने लगा, 'कितना अद्‌भुत दृश्य था वह, काश! मैं उसे फिर से देख पाता'। इस प्रकार विचार उस चीज़ को विषय-सुख के रूप में आपके मन में जिलाए रखता है। क्या यही प्रक्रिया है? फिर क्या होता है? आप वह सूर्यास्त

फिर कभी दोबारा नहीं देख पाते हैं–कभी भी नहीं!–क्योंकि उस प्रथम सूर्यास्त की याद हमेशा मन में बैठी रहती है, और आप हमेशा उसी से तुलना करते हैं। इसीलिए आप कभी भी किसी चीज़ का पूरी तरह से नया रूप नहीं देख पाते हैं।

तो प्रश्न यह उठता है: क्या आप उस सूर्यास्त को या सुंदर चेहरे को, अपने यौनाचार के अनुभव को, या किसी भी अनुभव को इस प्रकार अनुभूत कर सकते हैं कि आप उसे देखें या अनुभव करें और बात बस वहीं ख़त्म हो जाए, उसे आप अपने साथ ढोते न फ़िरें–चाहे वह सौंदर्य हो या भारी दुख हो या शारीरिक या मानसिक परेशानी हो? क्या आप ऐसा कर सकते हैं कि किसी सौंदर्य को देखें, अनुभव करें और चलते समय उसे वहीं छोड़ दें, साथ न ले जाएं, अगले दिन या अगले महीने या भविष्य के लिए उसे अपनी स्मृतियों के भंडार में न रखें? यदि आप उसे अपने स्मृति-भंडार में रख लेंगे, तो विचार उससे खेलना शुरू कर देगा। विचार दरअसल उन घटनाओं का भंडारण ही है जिन्होंने आपको कोई पीड़ा दी है या कोई सुख दिया है। तो यह कैसे हो कि कोई इसका प्रतिरोध भी न करे, पर इस पूरी प्रक्रिया के प्रति सजग भी रहे और विचार को इस प्रक्रिया में शामिल ही न होने दे?

मैं सूर्यास्त को देखना चाहता हूं, मैं वृक्षों को देखना चाहता हूं, जिसमें इस धरती ने सारी सुंदरता उड़ेल दी है। यह धरती मेरी या आपकी नहीं है बल्कि हमारी है, यह अंग्रेज़ों की, रूसियों की या भारतीयों की भी नहीं है, यह हम सब की धरती है–रहने के लिए, बिना किसी सीमा-सरहद के, बिना किसी घिनौने व बर्बर युद्ध के और बिना किसी आदमी की शैतानी हरकत के। मैं इसे देखना चाहता हूं। क्या आपने कभी किसी एकांत पहाड़ी पर खड़े किसी खजूर के पेड़ को देखा है? कितना अद्‌भुत लगता है वह! या किसी मैदान में खड़े अकेले पेड़ को? मैं उसे देखना चाहता हूं, मैं उसका आनंद लेना चाहता हूं, किंतु मैं उसे विषय-सुख का, सुख की स्मृति का रूप देकर बेहूदा और बौना नहीं बनाना चाहता। और विचार ऐसा ही करेगा।

ऐसा कैसे हो कि जब आवश्यक हो, विचार केवल तभी सक्रिय हो अन्यथा बिल्कुल भी हरकत में न आए? यह संभव है किंतु तभी संभव है जब सचमुच सजगता हो, विचार के तौर-तरीकों के प्रति, विचार की संरचना और स्वभाव के प्रति, और इसके प्रति भी कि इसे कहां काम करना चाहिए–बिलकुल तर्कसंगत और स्वस्थ रूप से, न कि पागलपन और अहम्मन्यता से–और कहां इसके लिए कोई स्थान नहीं है। तो, सौंदर्य और विचार क्या हैं? बुद्धि क्या सौंदर्य का कभी अवबोध कर सकती है? वह उसका वर्णन कर सकती है, उसकी अनुकृति बना सकती है, उसकी नकल कर सकती है, वह ऐसे बहुत से काम कर सकती है किंतु वर्णन तो केवल वर्णन होता है, वह वर्णन स्वयं वह वस्तु नहीं हो सकता जिसका कि वर्णन किया गया है। वर्णन वर्णित नहीं होता। इसकी चर्चा हम अनंतकाल तक कर सकते हैं।

तो यदि हमने सुख की प्रकृति और सिद्धांत को समझ लिया है तो अब हम देखें कि प्रेम क्या है? क्या प्रेम ईर्ष्या है? क्या प्रेम स्वामित्व भाव, अधिकार भाव है? क्या प्रेम हावी होना है, आसक्ति या मोह है? हमारे जीवन में चल रहे इस तमाम गड़बड़झाले से आप खूब परिचित हैं–स्त्री पुरुष पर हावी होना चाहती है या पुरुष स्त्री पर। पुरुष कोई काम इसलिए करता है क्योंकि वह इसी प्रवृत्ति का अनुगमन करना चाहता है; वह महत्त्वाकांक्षी, लोभी और ईर्ष्यालु है, ऊंचा स्थान और प्रतिष्ठा चाहता है। उसकी पत्नी कहती है, 'भगवान के वास्ते, ये बेकार और फिज़ूल के काम बंद करो और ज़िंदगी को एक अलग अंदाज़ में जीना शुरू करो।' और इस तरह दोनों के बीच दरार पड़ जाती है–भले ही वे दोनों साथ-साथ सोते हों। जहां महत्त्वाकांक्षा का वास हो, जहां दोनों में से हरएक अपने ही किसी ख़ास सुख की जुगाड़ में लगा हो, वहां क्या प्रेम रह सकता है?

फिर, प्रेम क्या है? बेशक वह तभी अवतरित हो सकता है जब वे तमाम चीज़ें जो प्रेम नहीं हैं, जैसे महत्त्वाकांक्षा, प्रतिस्पर्धा, किसी के जैसा बनने की तमन्ना, बिल्कुल नदारद हों। हमारा जीवन तो यही है : हम सुप्रसिद्ध हो जाना चाहते हैं, उपलब्धियां चाहते हैं, बहुत कुछ जानना चाहते हैं, एक लेखक, या एक चित्रकार यानी कोई बड़ी हस्ती बनना चाहते हैं। यही कुछ तो है जो हम चाहते हैं। क्या इस दौड़ में शामिल कोई भी यह जान सकता है कि प्रेम क्या होता है? अर्थात्, ऐसे व्यक्ति के लिए प्रेम का क्या कोई अर्थ है जो केवल अपनी ही उन्नति के लिए काम करता हो, केवल छोटे से दायरे में नहीं बल्कि अपने आप को राज्य के साथ, ईश्वर के साथ, समाज सेवा के साथ, देश के साथ, विश्वासों की पूरी श्रृंखला के साथ जोड़ कर? ज़ाहिर है, बिल्कुल भी नहीं। किंतु हम इसी फंदे में फंस जाते हैं। क्या हम इस फंदे के प्रति सजग हो सकते हैं? सचमुच सजग–इसलिए नहीं कि किसी ने ऐसा बता दिया है–बल्कि हम उस फंदे को जानें, उसे समझें जिसमें हम फंस जाते हैं और फिर उसे तोड़ डालें? यही वास्तविक क्रांति है, न कि बम विस्फ़ोट और सामाजिक परिवर्तन जैसी बेहूदगियां। हालांकि सामाजिक परिवर्तन तो आवश्यक है, किंतु बम बिल्कुल नहीं।

तो, जब कुछ बाकी नहीं रह जाता जो प्रेम नहीं है, तब व्यक्ति खोज लेता है या जाने-अनजाने पा लेता है, उसे न्यौता दिए बिना, उस शौ को, जिसे प्रेम कहते हैं। यह होता तभी है जब सुखभोग की प्रकृति को, उसकी फ़ितरत को हम सचमुच पहचान लेते हैं, और यह भी जान जाते हैं कि विचार उस चीज़ को किस तरह तबाह कर देता है जो कि वास्तव में एक महान हर्ष-अनुभूति रही थी। हर्ष को सुखविलास में भला कैसे तब्दील किया जा सकता है? हर्ष का आगमन सहज-स्वाभाविक होता है, यह बस हो जाता है, प्रसन्नता की तरह जो अपने आप आती है। किंतु ज्यों ही आप कहते हैं, 'अहा, मैं बहुत प्रसन्न हूं', आपकी प्रसन्नता जा चुकी होती है।

तो, इंसानी रिश्तों में प्रेम क्या होता है? इंसानी रिश्तों में प्रेम का क्या स्थान है? क्या इसका कोई स्थान है भी? फिर भी हमें साथ-साथ रहना-जीना पड़ता है, एक दूसरे से सहयोग करना पड़ता है, साथ-साथ संतानोत्पत्ति करनी पड़ती है। जो व्यक्ति प्रेम करता हो क्या वह अपने बेटे को युद्ध में भेज सकता है? यह आपकी समस्या है। आपके बच्चे होते हैं, और आपकी शिक्षा उन बच्चों को युद्ध के लिए, हत्या करने के लिए तैयार कर रही है। आप स्वयं देख लीजिए! तो यह कैसा प्रेम है और इसका मानव अस्तित्व के साथ क्या संबंध है? मैं समझता हूं कि इस प्रश्न का उत्तर–शाब्दिक या बौद्धिक उत्तर नहीं बल्कि खरा उत्तर–तभी दिया जा सकता है जब सुखभोग के, विचार के, और कुछ बनने के समूचे सिद्धांत को समझ लिया जाए। तब आप एक बिल्कुल ही भिन्न प्रकार के संबंध को जानेंगे।

ब्रॉकवुड पार्क,
11 सितंबर 1971

मन क्या है?

हम प्रेम के जटिल सवाल पर बातचीत कर रहे थे। मुझे नहीं लगता कि हम इसे तब तक समझ सकेंगे जब तक कि हम इतने ही एक और मुश्किल सवाल को भी न देख-समझ लें, जिसे हम मन कहते हैं। क्या आपने कभी ध्यान दिया है कि बचपन में हम कितने जिज्ञासु होते हैं, कौतुहल से भरे? हम जानना चाहते हैं, बड़े लोगों की अपेक्षा हम ज़्यादा चीज़ें देख पाते हैं। जिन चीज़ों पर बड़े लोग ध्यान भी नहीं देते हैं उन पर हमारी नज़र पड़ जाती है, अगर हम सचेत रहते हैं। बचपन में हमारा मन बहुत अधिक सचेत, बहुत अधिक जिज्ञासु और जानने को उत्सुक रहता है। यही कारण है कि बचपन में ही हम गणित और भूगोल जैसे विषयों को भी सरलता से सीख लेते हैं। किंतु जैसे-जैसे हम बड़े होते जाते हैं, हमारा मन निर्धारित धारणाओं में ढलता चला जाता है; बोझिल, भारी होता चला जाता है। क्या आपने ध्यान दिया है कि वयोवृद्ध लोग पूर्वाग्रहों से कितने अधिक ग्रस्त रहते हैं? उनका मन अड़ियल हो जाता है, उसमें खुलापन नहीं रहता है, और हर चीज़ को वे एक अड़ियल रुख से ही देखते हैं। अभी आप छोटे हैं; लेकिन अगर आप इस बारे में ज़्यादा सचेत नहीं रहेंगे तो फिर आप भी उन्हीं के जैसे बन जाएंगे।

तो क्या यह आवश्यक नहीं हो जाता है कि इस मन को समझा जाए, और इस बात का ध्यान रखा जाए कि मन कहीं धीरे-धीरे मंद-कुंद न होता चला जाए और आप चपल बने रहें, जीवन की हर अवस्था में त्वरित व सही बदलाव ला सकें, और जीवन में गहरी खोज को और समझ की असाधारण क्षमता को बनाए रख सकें? क्या आपको नहीं लगता कि प्रेम के कर्म-धर्म को समझने के लिए मन के व्यवहार को जान-समझ लेना आवश्यक है? क्योंकि यह मन ही है जो प्रेम को नष्ट कर देता है। चालाक लोग, वे लोग जो धूर्त हैं, नहीं जानते हैं कि प्रेम क्या होता है क्योंकि उनके मन इतने तेज़-तर्रार हैं, क्योंकि वे इतने चतुर हैं, क्योंकि वे इतने सतही हैं–यानी ऊपर-ऊपर, सतह पर रहते हैं–और प्रेम ऐसी चीज़ नहीं है जिसका वजूद सतह पर हो।

मन क्या है? मैं मस्तिष्क की, मस्तिष्क की भौतिक संरचना की बात नहीं कर रहा हूं, उसके बारे में तो आपको कोई भी फ़िज़ियोलॉजिस्ट बता देगा। मस्तिष्क का काम है–विभिन्न स्नायविक अनुक्रियाओं पर अपनी प्रतिक्रिया करना। किंतु आप पता लगाने जा रहे हैं कि मन क्या होता है। मन कहता रहता है, 'मैं सोचता हूं; यह मेरा है; यह तेरा है; मुझे ठेस लगी है; मुझे ईर्ष्या हो रही है; मैं प्रेम करता हूं; मुझे नफ़रत है; मैं भारतीय हूं; मैं मुसलमान हूं; मैं इसमें विश्वास रखता हूं; मैं उसमें विश्वास नहीं रखता हूं; मैं जानता हूं, आप नहीं जानते हैं; मैं आदर करता हूं, मैं तिरस्कार करता हूं; मैं चाहता हूं; मैं नहीं चाहता हूं'। यह सब क्या है? जब तक आप इसे समझ नहीं लेते–जब तक आप सोचने की पूरी प्रक्रिया से पूरी तरह अवगत नहीं हो जाते–जो कि मन है–जब तक आप उस बारे में सजग नहीं हो जाते, आप धीरे-धीरे, जैसे-जैसे आपकी उम्र बढ़ती जाएगी, अपना लचीलापन खो देंगे, निर्धारित धारणाओं में ढलते चले जाएंगे, मंद-कुंद होते चले जाएंगे, सोच के एक किस्म के ढर्रे में बंधते चले जाएंगे।

वह क्या है जिसे आप मन कहते हैं? यह सोचने का एक तरीका होता है। वह तरीका, जिससे आप सोचते हैं। मैं आपके मन की बात कर रहा हूं–किसी और के मन की नहीं और वह जिस तरह सोचेगा–जिस तरह आप महसूस करते हैं, जिस तरह आप पेड़ों को, किसी मछली को, मछुआरों को देखते हैं, जिस ढंग से आप किसी ग्रामीण के बारे में राय बनाते हैं। वह मन धीरे-धीरे किसी निश्चित ढर्रे में लिपटता चला जाता है या उसके सांचे में फ़िक्स होता चला जाता है। जब आप कोई चीज़ चाहते हैं, जब आप कोई इच्छा करते हैं, जब आप में कोई ललक उठती है, जब आप कुछ बनना चाहते हैं, तब आप एक पैटर्न बना लेते हैं; यानी आपका मन एक पैटर्न बनाता है और फिर खुद ही उसमें फंस जाता है। आपकी इच्छा आपके मन को एक निश्चित रूप-आकार दे देती है। उदाहरण के लिए, मैं एक बहुत धनवान व्यक्ति बनना चाहता हूं। धनवान बनने की मेरी यह इच्छा एक पैटर्न को पैदा करती है और फिर मेरी सोच उसी पैटर्न में उलझ जाती है, फिर मैं उसी के शब्दों में सोच पाता हूं और उससे पार या परे नहीं जा पाता हूं। इस प्रकार मेरा मन उसी में उलझा रहता है, उसी के अनुसार एक निश्चित धारणा बना लेता है, और इस प्रकार वह अपना लचीलापन खो बैठता है, मंद-कुंद हो जाता है। अथवा, मैं यदि कोई विश्वास पाल लेता हूं–जैसे